मुगल काल में भारत की संस्कृति : नृत्य एवं संगीत

सुमनलता,
हिसार हरियाणा

विल डेरां के शब्दों में ''सभ्यता संस्कृति के निर्माण की सामाजिक प्रकिया हैं इसके चार संघटकों- आर्थिक प्रावधानों, राजनीतिक संगठनों, नैतिक परंपराओं तथा ज्ञान और कला की साधना में प्रथम अधिक महत्वपूर्ण है। एक संगठन जिसमें अनुशासन, आचरण संहिता और लघु कथाओं की रूचि भी हो, एक सुगठित, आर्थिक जीवन का अंग होते हुए भी, स्वयं की एक सभ्य और सांस्कृतिक प्रणाली की स्थापना में असफल रहता हैं किंतु विभिन्न आर्थिक उद्यमों से युक्त एक व्यवस्थित निवास अवस्था (या राज्य) अनिवार्यतः एक सांस्कृतिक समाज का रूप धारण कर लेती है। इससे यह बात स्पष्ट होती है कि बहुधा संस्कृति से कृषि को क्यों समीकृत किया जाता रहा है।''[१] अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि किसी निश्चित भौगोलिक क्षेत्र और परिस्थिति में एक सभ्य समाज की सांस्कृतिक प्रणाली के अध्ययन के लिए उसके आर्थिक संगठन, राजनीतिक तंत्र, सामाजिक और धार्मिक आचरण, भाषा और शिक्षा, ललित कला और अन्य कलात्मक उपलब्धियों का समावेश करना होता है। अध्ययन किए जा रहे समुदाय का विद्या वैभव अनुकरण, अंतर्बोध और शिक्षकों के माध्यम से परंपरागत में एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में पूर्वजों, शिक्षकों तथा पुजारियों के द्वारा क्रमशः आगे बढ़ता जाता है। पुनः एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में अभिगन करने वाले कबीलों में जिन्होंने दूसरे समुदाय को उसके निवास स्थान से अपदस्थ करने का प्रयत्न किया, संघर्ष होते रहे।'' यह स्वाभाविक है कि श्रेष्ठ संस्कृति के कबीले की विजयहोती, किंतु संघर्ष से अंततः एक समभाव तथा संश्लेषण की भावना फलीभूत हुई। दो समुदाय सांस्कृतिक मूल्यों के मेल से नई संस्कृति का उदय होता रहा, जिसे प्रचलित रूप में संयुक्त संस्कृति का नाम दिया गया। ऐसी स्थिति अगले संघर्ष तक कायम रहती हे। स्थानीय संस्कृति आगत लोगों की बाह्य विशिष्टताओं तथा मानको को आत्मसात करने लगती है। किसी भी राष्ट्र के सांस्कृतिक इतिहास की यह एक आतरिक प्रक्रिया है।''[२] नृत्य और सगीत इसका अंश माने जाते है।

भारतीय नृत्यों की प्रमुख शास्त्रीय शैलियां जो विभिन्न क्षेत्रों मे प्रचलित थी, ये हैं- भरत नाट्यम् (तंजोर, मदुरा, मद्रास और बेलरू), कथकली (केरल), कत्थक (लखनऊ, जयपुर और दिल्ली), और ओडिसी (उड़ीसा)। प्राचीनकाल से चली आ रही इन नृत्यों की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि रही है। जैसा कि शांति स्वरूप अपनीपुस्तक ५००० इयर्स आफ आर्ट्स एंड क्राफटस इन इंडिया ऐंड पाकिस्तान में लिखा हैं, ''प्रत्येक पग और गति तथा भावमुद्रा में अध्यात्म की अभिव्यक्ति हैं भारत में नृत्य को दिव्य कला की मान्यता मिली है, जो मानव हृदय की शुभ भावनाओं को जागृत करने वाला है।''[३]

भरत नाट्यम :

भक्तों के हदय में ईश्वर के प्रति भक्ति जगाने के सशक्त माध्यम के रूप में मंदिरों में भक्ति संगीत और नृत्य का विकास किया गया था। एक वर्ग की स्त्रियाँ जिन्हें 'देवदासी' कहा जाता है , अपने को इस कार्य के लिए समर्पित कर दिया करती थी। नृत्य के सभी रूप तथा साथ में 'देवदासी' की प्रथा भी

दक्षिण में प्रचलित रही, क्योंकि वह उत्तर में मुस्लिम विजेताओं के आने के बाद भी दूरस्थ होने के कारण इस्लामी प्रभाव से बचा रही थी। ''सोलहवीं सदी के मध्य में जब वियजनगर साम्राज्य का पतन हुआ तो नृत्य की यह परम्परा बाधित हुई क्योंकि मुस्लिम शासक भक्ति संगीत और नृतय में किसी प्रकार की रूचि नहीं लेते थे।''[४] किन्तु इसके बाद की भरत नाट्यम में मुस्लिम ढंग से सुधार का 'सलामू' और 'तिल्लाना' नृत्यों का प्रचलन हुआ, जो दकन सुल्तानों के दरबारों में जारी रही। बिना किसी आदि-अंत के बनाई गई यह नृत्य शैली भी अधिक विकसित नहीं हुई और मुगलों की ढक्कन विजय के साथ समाप्त हो गई। फिर भी, ''भरत नाट्यम्' का ही एक रून 'कुचिपुड़ी' जो कृष्ण लीला हैं, कुचिपुड़ी के कुछ ब्राहमण परिवारों मे सुरक्षित रह गई।''[५]

कथकली –

इसी प्रकार एक आंदलोन केरल की नृत्य शैली कथकली को सुरक्षित रखने के लिए कालीकट में हुआ था। इसका श्रेय कालीकट के जमोरिन को प्राप्त हैं, जिसने श्रीकृष्ण के जीवन पर आधारित 'कृष्ण पदी' लिखा। कहा जाता है कि इसके लिए स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ने उसे दर्शन दिया था। इस घटना के उपलब्ध में उसने आठ रात्रि तक इस नाटक का प्रदर्शन किया था। जमोरिन के 'कृष्ण अत्तम' की लोकप्रियता से कोट्टारक्कारा के शासक को बहुत ईर्ष्या हुई और उसने स्वयं श्रीराम के चरित पर आधारित नाटक लिखा और श्रेष्ठ अभिनेताओं के सहयोग से उसका प्रदर्शन किया था। इस प्रकार कथकली की परंपरा १७वीं तथा १८वीं सदी तक चलती रही।

कत्थक :

''कत्थक संभवतः एकमात्र शास्त्रीय नृत्य पद्धति है''[६] जिसको मध्यकालीन भारत में समुचित प्रेरणा मिली थी। वस्तुतः यह एक लोक कला के रूप में प्रदर्शित किया जाता था, जोकि 'रामायण' और 'महाभारत' की कथाओं को नाच-गाकर प्रदशित करने के लिए देश के विभिन्न स्थानों में भ्रमण किया करते थे। आरम्भ में यह नृत्य किसी तकनीकी या शास्त्रीय तत्व से रहित था और इसका प्रसार उत्तर भारत के उतर प्रदेश, राजस्थान, पंजाब और मध्यप्रदेश के इलाकों तक ही सीमित था।'' किंतु वैष्णवों के धार्मिक आन्दोलन के साथ ही यह नृत्य एक प्रमुख शास्त्रीय कला के रूप में परिवर्तित हो गया तथा सुप्रसिद्ध नाट्यशास्त्र के निमयों के अनुरूप इसकी तकनीकी विकसित की गई।''[७]

दरबारी नृत्य :

''उन प्रारम्भिक मुस्लिम शासकों के यहाँ दरबारी नृत्य को धार्मिक स्वर के कारण प्रश्रय नहीं मिला, जिन्हे यहाँ फारस और मध्य एशिया से संगीतज्ञों तथा नर्तकियों को लाया गया था। इन दरबारी नर्तकियों को, 'डोमिनी', हंसिनी', 'लोलिनी' और ' हाड़किनी' जैसे कई नामों से पुकारा जाता था। उन्होंने कुछ भारतीय नृत्य शैलियों को भी अपनाया।''[८] उसी प्रकार कुछ हिंदू नर्तकियों ने भी, जिन्होंने दरबार की सेवा स्वीकार की थी। अपने स्वामी को प्रसन्न करने के लिए नई शैली के कुछ प्रभावों को ग्रहण कर लिया था। पारस्परिक प्रभाव तथा सामजस्य की यह प्रतिक्रिया अकबर के राज्यकाल में पूर्ण सम्मिश्रिण के रूप में फलीभूत हुई। कत्थक नर्तको ने भी फारसी ढंग की दरबारी पोशाक धारण कर ली तथा उनकी कथावस्तु भी बदल गई थी। ये अब केवल धार्मिक या आध्यात्मिक विषयों पर हिंदु लोकगाथाओं तक ही सीमित नहीं रह गए थे। उन्होंने 'धर्म निरपेक्ष, स्वरूप अपना लिया था और शांति स्वरूप के अनुसार, ''यह पूरी तरह शोभा और मनोरंजन की कला बन गई थी।''[९] किंतु वास्तविकता तो यह है कि मुगल साम्राज्य के पराभाव के बाद पतनोन्मुख हो यह कामोतेजक और विलासमय शैली हो गई थी।

संगीत

भारत के संगीत की परम्परा प्रागैतिहासिक काल से ही चली आ रही है जिसका प्रमाण आदि ग्रंथ 'सामवेद' प्रस्तुत करता है। मंदिरों में ही धार्मिक संगीत का केन्द्र था और हिंदू नरेश उसे संरक्षण प्रदान किया करते थे। किंतु धर्म नियमो के विरूद्ध होने के कारण कट्टर मुसलमानों से संगीत का आश्रय नहीं मिला था। "दिल्ली सुल्तान भी इसे नापसंद करते थे, हालांकि इनमें बलवन, जलालुद्दीन अलाउद्दीन खिलजी और मुहदम्मद-बिन-तुगलक जैसे कुछ ऐसे शासक भी हुए जिन्होंने संगीत समारोहों का आयोजन किया था।"[१०] बलवन का पुत्र शहजादा मुहम्मद उस समय के महान संगीतज्ञ अमीर खुसरो का संरक्षक था। बरानी ने अपनी पुस्तक 'तारीख-ए-फिरोजशाही' में जिक्र किया है कि कैकुआवाद और जलालुदीन (१२९०-९६) के राज्यकाल में कई संगीत समारोहों का आयोजन हुआ था। उसने तत्कालीन कई प्रसिद्ध संगीतज्ञों का भी उल्लेख किया है जिनमें मुहम्मद शाह, चुंगी, नुसरत खातून और मेहर अफरोज मुख्य है। उसने उन लोगों की संगीत कला और स्वर की भी काफी प्रंशसा की है ओर लिखा है कि 'उनके संगीतमय स्वर को सुनने के लिए पक्षी भी आसमान से उतर कर आ जाते थे, लोग उनका संगीत सुनकर बेसुध हो जाते थे। अलाउद्दीन को भी संगीत का बहुत शौक था, उसने कई संगीतज्ञों को फारस से बुला रखा थां उसके समय में तूरमती खातून भारतीय और ईरानी स्त्री सगीतज्ञों की प्रधान थी।

ख्याल और क्वाली :

अमीर खुसरों, अलाउद्दीन के समय का श्रेष्ठ संगीतकार था। वह भारतीय और फारसी दोनों प्रकार के संगीत का कुशल कलाकार था। उसने नये 'राग' भी बनाए थे। इसके अलावा फारसी और भारतीय साजों के मेल से उसने कई नए वाद्य यंत्र? भी बनाए थे। श्निबली ने अपने 'शैर-उल-आजम' में अमीर खुसरों द्वारा बनाए गए कई रागों का जिक्र किया है, जिनमें 'यमन', 'उसाक' 'मुआफिक', 'घानम', 'मुजिर' और 'फरगना' मुख्य है। उसका सबसे महत्वपूर्ण योगदान गायन की नई पद्धति है जिसे 'ख्याल' कहा जाता है और यह पद्धति आज भी लोकप्रिय है। वह गीतकार भी था और संभवतः पहला कवि था जिसने हिंदी में कविताएं लिखी थी। उसने हिंदू और ईरानी परम्पराओं का मिला सुगम गीत और लोकप्रिय संगीत की रचना की थी, जो 'कव्वाली' के रूप में प्रचलित होकर बहुत लोकप्रिय हुआ। हिंदुओं के भजन के रूप में प्रचलित होकर बहुत लोकप्रिय हुआ। हिंदुओं के भजन के अनुरूप'कव्वाली' गाने का प्रचलन शुरू हुआ था। "अलाउद्दीन के समय के अन्य संगीतज्ञों में बैजूबावरा, गोपाल नायक और मुहम्मदशाह महत्वपूर्ण हैं।"[११]

भक्ति संगीत :

भक्ति आंदोलन और सूफी समुदाय के संतों का इस कला के विकास में महत्वपूण भूमिका रही है। इस काल की अधिकांश संगीत रचनाएं संतक वितयों में महत्वपूर्ण भूमिका रही है। इस काल की अधिकांश संगत रचनाएं संतक वितयों द्वारा रचित गीतो पर आधारित हैं वे गेय पदों के द्वारा ईश्वर का गुणगान करते थे और उतर तथा दक्षिण में भी संगीत के माध्यम से अपने उपदेशों को जनसाधारण तक पहुंचाते थे। इनके भक्ति संगीत में एकता की प्रेरणा रहती थी। उत्तर में भक्ति संगीत को लोकप्रिय बनाने वालों में रामानंद, कबीर, गुरू नानक, मीराबाई, बल्लभाचार्य, चैतन्य, तुलसीदास और सूरदास का स्थान महत्वपूर्ण हैं रामदास और तुकाराम ने महाराष्ट्र में इस परम्परा का निर्वाह किया तथा दक्षिण के ऐसे संतों मे रामनुज, निबार्कु प्रमुख है। इसी प्रकार सूफी संतों का योगदान भी महत्वपूर्ण है। जिनमें मोहइनुद्दीन चिश्ती, कुतुबदीन बख्तियार काकी, फरीदुदीन गंज शंकर निजामुद्दीन ओलिया तथा शेख

सलीम चिश्ती के नाम उल्लेखनीय हैं मुस्लिम सूफी, विशेषकर चिश्तियो ंने ईश्वर भक्ति को जागृत करने के लिए सबसे सशक्त माध्यम के रूप में संगीत का उपयोग किया हैं तत्कालीन साहित्य में ऐसेकई प्रसंग आते हैं, जिनमें कव्वालों का सूफियों की उपस्थिति में गाने का जिक्र आया है। वास्तव में ईश्वर भक्ति मे ंमग्न होकर कई सूफी संत स्वयं गाने और नाचने लगते थे।

दक्षिण में संगीत का विकास :

इस युग के दौरान देश में संगीतशास्त्र पर अनेक रचनाएं लिखीगई जिसमें 'संगीतरत्नकार' (१३वीं सदी), 'संगीत समयसार' (१३वीं सदी), संगीतराय' ५वीं सदी), 'सगीत शिरोमणि (१५वीं सदी), 'सगीत कौमुदी' तथा 'सगीत नारायण' (१६वीं तथा १८वीं सदी) उल्लेखनीय और महत्वपूर्ण है। नायका शासकों (तंजोर के) विशेषकर उनके प्रधानमंत्री गोविंद दीक्षितयार द्वारा कर्नाटक संगीत कोविकास की बड़ी प्रेरणा प्राप्त हुई थी। इस क्षेत्र में महान विद्वान वेंकटमाखिन (१६५०) का योगदान सतुल्य है, जिसने बहतर 'मेलारागों' की ऐसी पद्धति निकाली थी, जिसके द्वारा नए या पुराने किसी राग को स्वर दिया जा सकता था। कर्णाटक के अन्य महत्वपूर्ण संगीतज्ञों में हरिदास पुरंदरदास (१४८०-१५६४) और पितबा थे। तिरूपति को संगीत के क्षेत्रों में अनुपम स्थान प्राप्त हैं, क्योंकि इसी ने सुविख्याता रचनाकार तलपक्कम और विशिष्ट विद्वान और संगतज्ञ क्षेत्रंरज (१७वी ंसदी) और तनप्पाचार्य को जन्म दिया है। दक्षिण भारत की संगीतकला में इनका योगदान चिरस्मरणीय है।

दरबारी संगीतज्ञ :

उत्तर में उन्हीं के समसामयिक, महान संगीतज्ञ तानसेन थे, जिन्हें ऐतिहासिक ख्याति प्राप्त हुई है। वे कला मर्मज्ञ अकबर के दरबार में थे जहां अबुल फजल के अनुसार हिंदू, ईरानी, तुरानी, कश्मीरी, स्त्री तथा पुरूष अनेक प्रकार के संगीतज्ञ थे। दबारी संगीतज्ञों को सात दिन केसप्ताह के क्रम से सात समूहों में विभाजित किया गया था। जब भी बादशाह सलामत की आज्ञा होती वे अपने मधुर संगीत की सरस धारा प्रवाहित करते जिसमें सराबोर होकर लोग झूमने लगते थे। ''आईन-ए-अकबरी' में ऐसे छतीस संगीतकारों के नाम है जिनका संगीत कला में कोई मुकाबला नहीं था। इनमें महत्वपूर्ण स्थान बाबा हरिदास वृंदावन वाले, बाबा रामदस, सुभान खां, मियां चांद, विचित्र खां, बाजबहादुर , सरोद खां और रंग सेन को प्राप्त था।''[१२]

जहांगीर और शाहजहां भी इस कला के बहुत बड़े प्रेमी थे। वे प्रतिदिन नियमित रूप से संगीत सुना करते थे। शाहजहां के समय में संगीत पर विशेष ध्यान दिया जाता था। उसके दरबार में लगभग तीस महत्वपूर्ण संगीतकार और वाद्यवादक शोभायमान थे। उन सबों में जगन्नाथ, सूरसेन, लाल खां, महापात्र और दुरंग खा श्रेष्ठ मानते जाते थे औरंगजेब रूढ़िवादी और कट्टर बादशाह था, जो धार्मिक कारणों से संगीत को नापसंद करता था। १६८८ मे उसने अपने दरबार के सभी संगीतकारों को बर्खास्त कर दिया था। इससंबंध मे ंएक अत्यंत रोचक कहानी प्रचलित है। संगीतकार लोग अपनी दयनीय स्थिति की तरफ बादशाह का ध्यान आकर्षित करने के लिए प्रयत्नशील थे। उन लोगों ने अर्थी निकालने का स्वांग रचा और साथ में शौक मग्न हो जाते गाते चल पड़ें। बादशाह द्वारा पूछे जाने पर लोगों ने उत्तर दिया कि ,'वे संगीत को दफनाने के लिए ले जारहे हैं' यह सुनकर बादशाह ने कहा, बहुत खूब, इसे ले जाकर इतना गहरा गाड़ना कि फिर ऊपर नहीं आए।' औरंगजेब की ऐसी प्रवृति के बावजूद भी संगीत की परंपरा समाप्त नहीं हुई थी। जैसा कि प्रो० मुजीब अपनी पुस्तक 'दि इंडियन मुस्लिम्स' मे लिखते हैं, ''हम यह निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि बादशाह की ऐसी प्रवृति के समर्थक बहुत कम लोग थे। औरंगजेब के समय में ही १६६५-६६ में 'राग दर्पण' लिखा

गया और 'मुरक्का-ए-दिल्ली' इसका प्रमाण है कि उस समय में 'राग के प्रति लोगों की रूचि थी। वे सब जो सुसंस्कृत थे संगीत को समझने और सहाहना करनं में समर्थ थे, भले हीवे संगीत की किसी शाखा के विशेष नहीं थे।''[१३] बाद के मुगल बादशाह विशेषकर जहांदार शाह और मुहम्मदशाह रंगीला संगीत प्रेमी और संगीतकला के संरक्षक थे। उनके राज्यकाल में इस कला का पुनः विकास हुआ था। सुप्रसिद्ध संगीतकार शाह सदारंग और उसका पुत्र अदारंग रंगीला के ही दरबार की शोभा थे, जिन्होंने 'ख्याल' को एक नूतन आयाम प्रदान किया था।

संदर्भ :-

१. विले डेटा, संस्कृति और मनुष्य, पृ० ३७
२. चौपड़ा, पुरी, दास, मैकलिमन, पृ० ३००
३. शांति स्वरूप, ५००० ईयर आफ आटर्स एंड क्राफट, पृ० २०१
४. चौपड़ा, पुरी, दास, मैकमिलन पृ० २२६
५. वही
६. रामदहीन, कत्थक एक परम्परा, पृ० ७७
७. वही
८. चौपड़ा, पुरी, दास, मैकमिलन पृ० २२६
९. शांति स्वरूप, १५०० ईयर आफ आर्स एंड क्राफट्स, पृ० २०२
१०. सुनीता पुटी, भारत का इतिहास, पृ० ३७
११. वही
१२. चौपड़ा, पुरी, दास, मैकमिलन, पृ० २२६
१३. मुजीव, द इंडियन मुस्लिम्स, पृ० १७३

Aayushi International Interdisciplinary Research Journal
ISSN 2349-638X
www aiirjournal.com